माता ज्ञानानन्दमयी के सान्निध्य में श्रीश्रीमाँ (१)

ज्ञानानन्दमयी माँ के आमंत्रण पर रविवार १८ सितम्बर सन् २०११ को श्रीश्रीमाँ सोनारपुर अवस्थित उनके 'मातृशक्ति' आश्रम में गयी। श्रीश्रीमाँ के साथ हमलोग कई गुरुभ्राता एवं गुरुबहन भी वहाँ गये थे। अपराह्न लगभग ४ - ४.३० बजे हमलोग सोनारपुर पहुँचे। आश्रम में प्रवेशकाल के समय ही श्रुतिगोचर हुई गांभीर्यपूर्ण रुद्र-गायत्री मंत्र की प्रतिध्वनि। वृद्धा श्रीश्रीज्ञानानन्दमयी माँ ने स्वयं ही बाहर आकर श्रीश्रीमाँ का स्वागत किया एवं अति हर्षित होकर उन्हें अपना आश्रम दिखलाने ले गयीं। सर्वप्रथम हमलोग आश्रम के प्रांगण में स्थापित शिव मंदिर में गये, वहाँ बाबा नर्मदेश्वर को प्रणाम कर फिर प्रवेश किया आश्रम के मंदिर में। वहाँ शिव-पार्वती की मूर्ति सदृश, सरोज के ऊपर अधिष्ठित वाणेश्वर शिव के गोद में स्थित श्रीश्रीतारा-कालिका माँ की अति मनोरम युगल मूर्ति का दर्शन पाकर मन तृप्त हो गया। श्रीश्रीज्ञानानन्दमयी माँ ने, जिनकी आराध्या वह युगल-मूर्ति थी उसको 'नील-सरस्वती' के नाम से परिचित कराया। इसके अलावा भी वहाँ तारा माँ की तस्वीर एवं अन्य कई तस्वीरें थीं। श्रीश्रीज्ञानानन्दमयी माँ ने उन सभी तस्वीरों के मध्य अवस्थित अपनी मातृगुरु श्रीकालिका माँ की तस्वीर श्रीश्रीमाँ को दिखायी। इसके पश्चात् श्रीश्रीमाँ समीप के एक घर में विश्राम के लिए कुछ देर बैठी। वे लोग हम सभी को सम्पूर्ण आश्रम दिखाने के लिए ले गए। हम सभी आश्रम के धान के खेत, सरोवर, सब्जी व फूल के बागानों को देखते हुए विस्मय से मुग्ध रह गए। वहाँ से लौटकर श्रीश्रीमाँ एवं हम सभी आश्रम के दूसरी मंजिल पर स्थित छत पर गए। ऊपर सुन्दर शेड लगा हुआ था तथा चतुर्दिक खुलेछत पर ही हम सभी के बैठने की व्यवस्था की गयी थी। वहाँ शंख-ध्वनि के साथ श्रीश्रीमाँ का स्वागत व अभिनन्दन कर उन्हें उनके निर्दिष्ट स्थान पर विराजित कर श्रीश्रीमाँ का पद-प्रक्षालन किया गया एवं माल्यार्पण द्वारा उपस्थित भक्तवृंदों ने अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति की। तत्पश्चात् आश्रम की ही एक सन्यासिनी ने आरती के माध्यम से श्रीश्रीमाँ का वरण किया।

माता ज्ञानानन्दमयी के संग श्रीश्रीमाँ

तदुपरांत श्रीश्रीज्ञानानन्दमयी माँ ने अपने शिशु-सुलभ आत्मीयता के भाव से, भक्त-शिष्यों के ज्ञानवृद्धिहेतु श्रीश्रीमाँ से कुछ बोलने के लिए अनुरोध किया। श्रीश्रीमाँ ने अपने स्वभावगत विनीत कोमल भाव से कहा, ''मैं तो कुछ बोल नहीं पाती हूँ, क्या बोलू? अपितु, मैं एक शिव–स्तव सुनाती हूँ।'' यह बोलकर ही श्रीश्रीमाँ ने ''ध्याये नित्यं महेशं .....'' स्तव, वाद्यरहित गाकर सुनाया। सुर की वह अपूर्व विभोरता और स्तव की गांभीर्यपूर्ण तारतम्यता भंग होने से पूर्व ही श्रीश्रीज्ञानानन्दमयी माँ ने पुनः शिशु की तरह श्रीश्रीमाँ से कुछ बोलने हेतु जिद किया। तब श्रीश्रीमाँ ने बोलना प्रारम्भ किया – ''यहाँ आकर सर्वप्रथम शिव मंदिर में स्थित भगवान शिव का दर्शन करके मुझे बहुत अच्छा लगा। इसी मंदिर में कई तस्वीरों को देखा – इसमें एक तस्वीर में तारकेश्वर के शिव मंदिर मध्य सारदा माँ मन्नत हेतु शिव के पास बैठी हैं। ऐसी तस्वीर मैंने कभी देखी ही नहीं। श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंस देव साक्षात् शिव थे, उनके ही जीवन रक्षार्थ प्रार्थना हेतु माँ सारदा ने साष्टांग भूमिष्ठ होते हुए तारकेश्वर की पदयात्रा की थी। मेरे गुरु का शरीर श्रीश्रीरामकृष्णदेव का ही नवकलेवर था। उन्होंने मुझसे कहा था कि सारदा माँ के सीने पर घट्ठा पड़ गया था। छाती पर की जगह त्वचाहीन हो गयी थी। फिर भी श्रीरामकृष्ण परमहंस का शरीर बचाया नहीं जा सका। क्योंकि वह तो स्वयं ही तारकनाथ ही थे न? इसलिए उनकी ही इच्छा भगवान ने पूरी की थी। और चैतन्य महाप्रभु की एक छवि भी देखी जिसमें चैतन्य महाप्रभु भावावेश में विराजित है, तसवीर देखकर मुझे बहुत अच्छा लगा। आज भी चैतन्य महाप्रभु प्रायः प्रभु जगदबन्धु के रूप में, कभी कृष्ण की ज्योतिरूप में, तो कभी महाप्रभु के संकीर्तनरत रूपमें, मुझे दर्शन देते है। यह छवि भी मेरे लिए नूतन ही थी।

और एक माँ (ज्ञान माँ) के दर्शन की तस्वीर देखी। माँ के कक्ष में प्रवेश कर देखा कि श्रीश्रीरामकृष्ण परमहंस देव अपने हाथ ऊपर कर के खड़े हुए है, यह अत्यंत ही प्रचलित व प्रसिद्ध छवि है, उनके पीछे चैतन्य महाप्रभु,

शंकराचार्य, बुद्धदेव, श्रीकृष्ण और प्रभु श्रीरामचन्द्र। यह चित्र भी मेरे मन को बहुत भाया।

प्रत्येक साधक व प्रत्येक साधिका जब आत्मज्ञान के पथ पर चलते हैं, सद्गुरु परम्परा के देव-देवी मण्डल, महापुरुष मण्डल, सत्य दर्शन के पथ पर उन्होंने जिन सब महापुरुषों को पृथ्वी पर जन्म-जन्मान्तर के साधन काल में देखा है वे सभी एक-एक करके दर्शन देते हैं। हम सभी के अन्तर की आत्मसत्ता जिसे हम स्थूल चक्षुओं से देख नहीं पाते किन्तु वह आत्मशक्ति जो हमें सब कुछ बोध कराती है – चिन्ता कहो, भावना कहो, प्रेम कहो, आनन्द कहो, दु:ख कहो, सब एक ही केन्द्र - हृदय की आत्मशक्ति, से प्रत्येक मनुष्य के मध्य उद्बुद्ध हो रहे है। उस आत्मसत्ता ने जिन सब महाशक्तिधर, महाचिन्मय, ज्योतिर्मय अवतारों अथवा महात्माओं का दर्शन अपने जन्म-जन्मांतरो में किया है, पुन: नए सिरे से साधना के समय स्मृति पटल से वे सभी मानस पटल पर उद्भासित होते है। इन (ज्ञानानन्दमयी माँ)का भी निश्चित रूपसे ऐसा ही हुआ होगा। इस वर्तमान युग में, एक जन्म में ही तो अल्पवयस् से ही कोई त्याग–मार्ग का अवलम्बन नहीं करता। त्याग के पथ पर चलने हेतु, मानसिक शक्ति एवं विश्वास का प्रयोजन होता है – भगवान के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा न रहने से वह तट-विहीन दरिया में कूद नहीं सकेगा। भगवान के पथ पर जो चलना चाहता है प्रथमत: उसे सद्गुरु के ऊपर विश्वास करना पड़ता है। सद्गुरु ऐसे समुद्र की न्यायिक है, जिसका कुल-किनारा देखा नहीं जा सकता। जो छलांग लगाएगा वह सद्गुरुरूपी समुद्र के मध्य में दूसरा तट देख नहीं सकेगा, 'लेकिन सद्गुरु उसे दूसरे तट तक पहुँचा देंगे' यह विश्वास लेकर ही उसे छलाँग लगानी होगी। इस विश्वास में प्रबल अन्तर की दृढ़ता सम्पन्न मानसिकता, अन्तर का वही आवेग अथवा संवेग विद्यमान ना रहने से कभी भी समस्त पार्थिव जगत् के प्रवृत्ति मार्ग को परित्याग कर वह भगवान के पथ पर, भगवान का विराट स्वरूप देखने के लिए निवृत्ति मार्ग पर चल नहीं पाएगा। अनेक जन्मों के संस्कार एवं बहु जन्मों की कृपा – सिर्फ महापुरूष ही नहीं, देव-देवी एवं स्वयं श्रीकृष्ण के कृपा न करने से कोई भी मनुष्य इस त्याग के आसन पर बैठ नहीं सकता और निवृत्त ना होने पर भगवत्-दर्शन नहीं होगा। इसीलिए योग-साधना कहो, जप-साधन कहो, ये सभी ईश्वर के संग युक्त होने के लिए ही है; कोई भी साधना युक्त होने के लिए होती है। तुम यदि कोई गीत सीखते हो या कोई चित्र अंकित करते हो उसमें यदि तुम मन को युक्त ना करो तो वह कभी भी प्रस्फुटित नहीं होगा। यही कारण है कि प्रत्येक विषय में एक योग या युक्तावस्था होती है। किसी भी विषय के साथ वियोग कर उस वस्तु को प्रस्फुटित नहीं किया सकता। इस योग के पथ पर तुम्हें बहिर्मुखी स्थिति को निवृत्त कर तुम्हें निवृत्ति पथ पर आना होगा तभी सत्य दर्शन होना सम्भव होगा। संसार में रहकर चाहे तुम बहिर्मुखी कर्म करो लेकिन अन्तर में लक्ष्य अटल रहेगा। सर्वप्रथम स्वयं को जानना, अर्थात्, मेरी यह सत्ता – मेरे अन्त:करण में जो अवस्थित है वे न जाने कितने सुन्दर है! उनकी कृपा, उनकी शक्ति से ही मैं बहिर्जगत् के दृश्य तथा समग्र जगत् देख पा रही हूँ, इस पृथ्वी की जिन्होंने सृष्टि की है, इस विश्व-प्रकृति की इतनी सुन्दरता से सृष्टि की है जिन्होंने, वे ना जाने स्वयं कितने सुन्दर है!! उनको देखने की इच्छा जिसके हृदय मध्य जाग्रत होती हैं, इसका अभिप्राय है उसकी सत्बुद्धि जाग्रत हो चुकी है। साधारण बुद्धि से नही अपितु सत्बुद्धि जाग्रत होने से ही तब परम पिता परमेश्वर को देखने की इच्छा जाग्रत होती है। सभी लोग सद्गुरु का आश्रय लाभ कर जप करो अथवा ध्यान करो किसी एक निर्दिष्ट समय जब तुम गुरु-प्रदत्त कर्म करने बैठोगे तब बहिर्मुखी संसार को भूलकर सिर्फ उनकी ही चिन्ता करोगे, निश्चित् ही तुम लोग अग्रसर हो सकोगे।'' यह सब बोलते हुए श्रीश्रीमाँ ने अपना वक्तव्य शेष किया। .....क्रमश:

हिन्दी अनुवाद – मातृचरणाश्रित श्रीविमलानन्द

विशुद्ध बुद्धि आत्मदर्शन करती है। मन आत्मदर्शन करने में समर्थ नहीं होता है। मन रज: तम विहीन हो जाने पर मन नहीं रहता, बुद्धि हो जाता है। तपोरत साधक माया से उत्तीर्ण हो सकने से ही 'मैं देह हूँ' यह ज्ञान करते हैं – इस बुद्धि का नाम अविद्या और मैं देह नहीं 'चिदात्मा' हूँ – ऐसी बुद्धि का नाम विद्या है। बुद्धि विद्या में रूपान्तरित होने से ही 'बुद्धि स्थिर' हो जाती है। साधक की बुद्धि स्थिर होने पर देहाभिमान दूर हो जाता है एवं वह ज्ञानी हो जाता है।

–श्रीश्रीमाँ सर्वाणी